RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2024

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 4 सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** – पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** – प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** – प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** – पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** – पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** – सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** – पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** – पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

महर्षि दयानन्द का सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक योगदान

डॉ. मुकेश शर्मा
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

आर्यसमाज के प्रतिष्ठापक महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतीय नवजागरण के ऐसे युगपुरुष हैं, जिनका जीवन और विचार केवल किसी एक संप्रदाय तक सीमित नहीं रहे, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज के बौद्धिक, नैतिक और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण से जुड़े रहे हैं। उनका जीवनचरित और चिंतन भारत ही नहीं, अपितु विश्व के प्रबुद्ध मनीषियों के लिए भी अध्ययन और प्रेरणा का विषय रहा है। भारतरत्न स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म विक्रम संवत् 1881 भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को काठियावाड़ प्रान्त में पण्डित अम्बाशंकर की धर्मपत्नी के गर्भ से हुआ। जन्मकालीन ज्योतिषीय संयोगों की चर्चा से अधिक महत्वपूर्ण उनका वह वैचारिक तेज है, जिसने आगे चलकर भारतीय समाज की दिशा बदलने का कार्य किया।

महर्षि दयानन्द का सामाजिक योगदान मुख्यत: समाज-सुधार की चेतना से प्रेरित था। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त अज्ञान, अंधविश्वास, जातिगत ऊँच-नीच, छुआछूत, स्त्री-अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियों का निर्भीक होकर विरोध किया। उनका स्पष्ट मत था कि समाज की उन्नति तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, शिक्षा और सम्मान प्राप्त हो। उन्होंने स्त्रियों के शिक्षा-अधिकार, विधवा-विवाह और नारी सम्मान की आवश्यकता पर बल दिया तथा समाज को यह संदेश दिया कि नारी केवल गृहस्थी तक सीमित नहीं, बल्कि समाज की आधारशिला है। दयानन्द का सामाजिक चिंतन कर्म, गुण और आचरण को मानवीय मूल्यांकन का आधार मानता है, न कि जन्म या जाति को।

धार्मिक क्षेत्र में महर्षि दयानन्द का योगदान अत्यन्त क्रांतिकारी और दूरगामी सिद्ध हुआ। उन्होंने वैदिक धर्म की शुद्ध और मौलिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए 'वेदों की ओर लौटो' का उद्घोष किया। उनका उद्देश्य धर्म को रूढ़ियों, पाखण्ड और कर्मकाण्ड की जटिलताओं से मुक्त कर उसे तर्क, विज्ञान और नैतिकता से जोड़ना था। उन्होंने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, भाग्यवाद और अंधश्रद्धाओं का विरोध करते हुए ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक और न्यायकारी सत्ता के रूप में प्रतिपादित किया। आर्यसमाज की स्थापना के माध्यम से उन्होंने ऐसा धार्मिक आंदोलन खड़ा किया, जो विवेक, सत्य और नैतिक जीवन को धर्म का मूल मानता है। उनका ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' भारतीय धार्मिक चिंतन में एक नई चेतना का प्रतीक बना।

राजनीतिक दृष्टि से महर्षि दयानन्द का योगदान अप्रत्यक्ष होते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली रहा। उन्होंने उस समय 'स्वराज्य' का विचार प्रस्तुत किया, जब भारत पर औपनिवेशिक शासन की जकड़न थी और राजनीतिक चेतना का व्यापक प्रसार नहीं हुआ था। उनका मानना था कि राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

मानसिक, नैतिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता आवश्यक है। उन्होंने विदेशी शासन की आलोचना करते हुए स्वदेशी शिक्षा, स्वदेशी भाषा और स्वदेशी संस्कृति के संरक्षण पर बल दिया। उनके विचारों ने आगे चलकर लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय और अन्य राष्ट्रवादी नेताओं को प्रेरित किया। इस प्रकार दयानन्द का राजनीतिक चिंतन राष्ट्रबोध और आत्मगौरव की भावना को जागृत करने वाला सिद्ध हुआ।

समाज :

स्वामी दयानन्द सरस्वती का सामाजिक दर्शन भारतीय नवजागरण की चेतना से अनुप्राणित था। वे ऐसे समाज की कल्पना करते थे जिसमें रहने वाले व्यक्ति शिष्ट, मानवीय, सदाचारी तथा धर्मनिष्ठ हों। उनके लिए समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों, कर्तव्यबोध और सांस्कृतिक चेतना से संयुक्त एक जीवंत इकाई था। स्वामी दयानन्द का स्पष्ट मत था कि समाज की वास्तविक उन्नति तभी संभव है जब उसके प्रत्येक सदस्य में सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपालन और भारतीय शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग हो। वेदों तथा ऋषियों के वचनों पर पूर्ण आस्था और सत्य भाषण का अभ्यास उनके आदर्श समाज की आधारशिला था।

अपने इसी सामाजिक दृष्टिकोण को व्यवहारिक रूप देने के लिए स्वामी दयानन्द ने समाज-सुधार को संगठित आंदोलन का रूप दिया। इसी उद्देश्य से उन्होंने भारत के विभिन्न नगरों में आर्यसमाज की स्थापना की, ताकि समाज को वैदिक मूल्यों के अनुरूप पुनर्गठित किया जा सके। आर्यसमाज केवल धार्मिक संस्था नहीं था, बल्कि वह सामाजिक सुधार, नैतिक अनुशासन और लोककल्याण का सशक्त माध्यम बना। समाज के सुव्यवस्थित संचालन और सर्वांगीण कल्याण के लिए स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के दस नियम निर्धारित किए, जिनमें ईश्वर को समस्त सत्यविद्या का मूल मानते हुए उसे निराकार, सर्वव्यापक, न्यायकारी और दयालु सत्ता के रूप में स्वीकार करने पर बल दिया गया है। इन नियमों में वेदों को समस्त सत्यविद्याओं का आधार मानते हुए उनके अध्ययन, अध्यापन और प्रचार को प्रत्येक आर्य का परम कर्तव्य बताया गया है।

स्वामी दयानन्द का सामाजिक चिंतन सत्य के ग्रहण और असत्य के परित्याग पर आधारित था। वे मानते थे कि प्रत्येक कर्म धर्म के अनुरूप, विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए। उनके अनुसार समाज का प्रमुख उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के माध्यम से समस्त संसार का उपकार करना है। समाज के प्रत्येक सदस्य को दूसरों के साथ प्रेम, न्याय और धर्म के अनुसार व्यवहार करना चाहिए तथा अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति को केवल अपनी उन्नति तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि समस्त समाज की उन्नति में ही अपनी उन्नति का बोध करना चाहिए। इस प्रकार उनका सामाजिक दर्शन व्यक्तिगत और सामूहिक हित के संतुलन पर आधारित था।

शिक्षा को समाज-सुधार का सशक्त साधन मानते हुए स्वामी दयानन्द ने बालकों और बालिकाओं दोनों के लिए पाठशालाओं की स्थापना पर विशेष बल दिया। इन शिक्षण संस्थानों में आर्ष ग्रंथों और वेदों की शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया, ताकि भावी पीढ़ी में नैतिकता, धर्मबोध और सांस्कृतिक चेतना का विकास हो सके। उनके लिए शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण और समाज-निर्माण की प्रक्रिया थी। स्त्री-शिक्षा के समर्थन के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन समाज की रूढ़ मानसिकता

को चुनौती दी और नारी को समाज के विकास में समान सहभागी माना।

पारिवारिक जीवन के संदर्भ में भी स्वामी दयानन्द का सामाजिक दृष्टिकोण अत्यंत स्पष्ट और नैतिक था। वे एक पत्नीव्रती पुरुष को ही आदर्श मानते थे और दाम्पत्य जीवन में पारस्परिक संतोष, विश्वास और कर्तव्यबोध को आवश्यक समझते थे। उनके अनुसार सुदृढ़ परिवार ही सुदृढ़ समाज की आधारशिला है, और जब परिवार नैतिक मूल्यों पर आधारित होता है, तभी समाज भी स्वस्थ और सशक्त बनता है।

संस्कृति :

स्वामी दयानन्द सरस्वती का अवतरण ऐसे काल में हुआ, जब भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपने गौरवशाली अतीत से विमुख होकर पतन की ओर अग्रसर थी। विदेशी शासन, सामाजिक जड़ता और धार्मिक विकृतियों के कारण भारतीय सांस्कृतिक चेतना शिथिल हो चुकी थी। इस सांस्कृतिक ह्रास को देखकर स्वामी दयानन्द का अंत:करण अत्यन्त व्यथित हुआ और उन्होंने सांसारिक सुख-वैभव तथा पारिवारिक जीवन का परित्याग कर भारतीय संस्कृति की रक्षा और पुनर्स्थापना का व्रत धारण किया। उनके जीवन-त्याग और राष्ट्रनिष्ठा का चित्रण समकालीन संस्कृत काव्य में इस रूप में किया गया है कि उन्होंने घर का वैभव, स्नेहिल परिवार और माता-पिता तक का सान्निध्य छोड़कर सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र और संस्कृति की सेवा में समर्पित कर दिया।

हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के प्रति स्वामी दयानन्द की आस्था अडिग और सुदृढ़ थी। वे हिन्दू धर्म के मूल स्वरूप को श्रेष्ठ मानते थे, किंतु उसके नाम पर प्रचलित कुरीतियों और विकृत आचारों के घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि मूर्तिपूजा, जातिप्रथा, छुआछूत और आडंबरपूर्ण कर्मकाण्डों ने भारतीय संस्कृति की आत्मा को आच्छादित कर दिया है। इसी कारण उन्होंने निर्भीक होकर मूर्तिपूजा का विरोध किया और यह प्रतिपादित किया कि जड़ पदार्थों की पूजा की अपेक्षा माता-पिता, आचार्य और विद्वान गुरुजनों का सम्मान एवं सेवा ही सच्ची पूजा है। उनके अनुसार ज्ञान, तप और सदाचार से सम्पन्न ऋषि तथा गुरु ही वास्तविक तीर्थ हैं, क्योंकि वे मानव को अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाते हैं।

स्वामी दयानन्द की सांस्कृतिक निष्ठा ईश्वर, वेद, वाग्देवी सरस्वती, संस्कृत भाषा, मातृभूमि और अपने गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे वेदों को समस्त ज्ञान का मूल स्रोत मानते थे और वेदचतुष्टय, उपवेद, वेदांग, उपांग तथा मनुस्मृति को प्रामाणिक ग्रंथों के रूप में स्वीकार करते थे। संस्कृत भाषा के प्रति उनका समर्पण विशेष उल्लेखनीय है। उनके विचार में संस्कृत केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और चिंतन की आत्मा है, जिसके संरक्षण और प्रचार के बिना सांस्कृतिक पुनर्जागरण असंभव है।

भारतीय संस्कृति में करुणा और अहिंसा को केंद्रीय मूल्य मानते हुए स्वामी दयानन्द ने गोवध को अधार्मिक और अनुचित घोषित किया। उन्होंने गोरक्षा के लिए निरंतर प्रयत्न किए और इस विषय में अंग्रेज शासकों से भी अनेक बार तर्कपूर्ण वाद-विवाद किया। इसी प्रकार वे जड़पूजा, ईश्वर की उत्पत्ति से जुड़े मिथ्या सिद्धांतों, मृतक-श्राद्ध, तीर्थ-आडंबर और बाह्य चिह्नों जैसे तिलक आदि के भी विरोधी थे, क्योंकि उनके अनुसार ये सब सांस्कृतिक शुद्धता की अपेक्षा अंधविश्वास को बढ़ावा देते थे।

भारतीय नारी की दुर्दशा ने स्वामी दयानन्द को गहरे दु:ख से भर दिया। समाज में स्त्रियों की

उपेक्षा, अशिक्षा और अमानवीय व्यवहार को देखकर उन्होंने भारतीय संस्कृति के पतन पर करुण स्वर में चिंता व्यक्त की। उनके काव्यात्मक उद्गारों में यह पीड़ा स्पष्ट झलकती है कि जिस भूमि की संस्कृति कभी इतनी उन्नत थी कि स्वर्गवासी भी उसकी कामना करते थे, उसी भूमि पर आज स्त्री को मृत पुत्र के वस्त्र तक नसीब नहीं होते। वे नारी को समाज और संस्कृति की जननी मानते थे और उसके संरक्षण, शिक्षा तथा नैतिक उत्थान के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे। अपने उपदेशों के माध्यम से उन्होंने स्त्रियों को कुरीतियों से मुक्त कर सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया और यह स्पष्ट किया कि बिना शुभ शिक्षा के आर्य जाति की कन्याओं की स्थिति अत्यन्त शोचनीय बनी रहेगी।

शिक्षा को संस्कृति का मूल आधार मानते हुए स्वामी दयानन्द गुरुकुल परंपरा के प्रबल समर्थक थे। वे गुरुकुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करने और शिक्षा पूर्ण होने पर गुरुदक्षिणा देने की वैदिक परंपरा को अनिवार्य मानते थे। हरियाणा के झज्जर स्थित गुरुकुल तथा महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक से संबद्ध संस्थान उनकी इसी सांस्कृतिक-शैक्षिक दृष्टि के प्रतीक हैं, जो संस्कृत भाषा और वैदिक परंपरा के महत्त्व का उद्घोष करते हैं।

स्वामी दयानन्द भारतीय सांस्कृतिक मर्यादाओं के अंतर्गत मान्य षोडश संस्कारों को भी स्वीकार करते थे। इन संस्कारों को समाज में पुन: प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से उन्होंने 'संस्कारविधि' नामक ग्रंथ की रचना की, जिससे जीवन के प्रत्येक चरण को शुद्ध, मर्यादित और संस्कारयुक्त बनाया जा सके। साथ ही वे ब्रह्मचर्य और संन्यास आश्रम को त्याग, संयम और उच्च आदर्शों का प्रतीक मानते थे और इन्हें भारतीय संस्कृति की आत्मिक शक्ति का आधार स्वीकार करते थे।

राजनीति, देशभक्ति एवं धर्म :

स्वामी दयानन्द सरस्वती का राजनीतिक चिंतन भारतीय वैदिक परंपरा और मनुस्मृति में प्रतिपादित आदर्शों पर आधारित था। वे राजनीति को केवल सत्ता-प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि लोककल्याण, न्याय और धर्म की स्थापना का माध्यम मानते थे। इसी कारण उन्होंने प्रशासकों और शासकों को वेदसम्मत तथा मनुसम्मत राजनीति अपनाने की शिक्षा दी। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ *सत्यार्थप्रकाश* में उन्होंने राजधर्म का विस्तृत विवेचन करते हुए शासन की नैतिक और व्यावहारिक आधारशिला प्रस्तुत की। इसमें सभात्रय की व्यवस्था, राजा के गुण और लक्षण, दण्ड-व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, व्यसनों से दूर रहने की अनिवार्यता, मंत्री, दूत तथा अन्य राजपुरुषों की योग्यताएँ, दुर्ग-निर्माण, युद्ध के प्रकार, प्रजा की रक्षा, कर-ग्रहण की मर्यादा, मंत्रणा, षाड्गुण्य, मित्र-शत्रु का विवेचन, न्यायालयों की संरचना तथा वाद-विवाद की विधि जैसे विषयों का प्रतिपादन वेद और मनु की परंपरा के अनुरूप किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि दयानन्द का राजनीतिक दर्शन नैतिकता, अनुशासन और लोकहित पर केंद्रित था।

स्वामी दयानन्द की राजनीति का मूल उद्देश्य राष्ट्र और प्रजा का कल्याण था। वे मानते थे कि शासक का पहला कर्तव्य अपनी प्रजा की रक्षा, न्यायपूर्ण शासन और समाज में सदाचार की स्थापना करना है। राजा को दण्ड का प्रयोग भी प्रतिशोध के लिए नहीं, बल्कि समाज में व्यवस्था और धर्म की रक्षा के लिए करना चाहिए। उनके अनुसार शासन तभी सफल हो सकता है, जब वह लोभ, मोह और व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त होकर कार्य करे। इस प्रकार उनका राजनीतिक चिंतन आधुनिक अर्थों में संवैधानिक न होते हुए भी मूलत: लोककल्याणकारी और नैतिक राज्य की संकल्पना प्रस्तुत करता है।

देशभक्ति के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान अत्यन्त प्रेरणादायी है। देशवासियों को वेदसम्मत और मनुसम्मत आचरण का उपदेश देना तथा राष्ट्रहित के लिए नगर-नगर जाकर लोगों को अधर्म और राष्ट्रविरोधी तत्वों से सावधान करना उनकी सच्ची देशभक्ति का परिचायक है। वे केवल भावनात्मक देशप्रेम के समर्थक नहीं थे, बल्कि व्यवहारिक और जागरूक राष्ट्रभक्ति के पक्षधर थे। देशकल्याण और राष्ट्रोन्नति के लिए उन्होंने 'एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य' के सूत्र को अपनाने की प्रेरणा दी, जिससे समाज में एकता, अनुशासन और राष्ट्रीय चेतना का विकास हो सके।

वेदों के प्रचार द्वारा रूढ़िवादिता को दूर करना, जन्मभूमि के प्रति प्रेम की भावना जागृत करना, संस्कृत और हिन्दी भाषा के प्रयोग का आग्रह, स्वराज्य की चेतना, स्त्री-शिक्षा, गोरक्षा, अछूतोद्धार, करुणा और दयाभाव, राष्ट्र को निर्धनता से उबारने की चिंता, अन्नोत्पादन और आर्थिक स्वावलंबन पर बल, प्राचीन वाणिज्य-व्यापार प्रणाली के पतन तथा यान्त्रिकता के दुष्प्रभावों की चिंता, और पराधीनता के दु:ख का अनुभव—ये सभी तथ्य उनकी राष्ट्रवादी भावना को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से स्वामी दयानन्द आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारम्भिक सूत्रधारों में गिने जा सकते हैं।

धार्मिक क्षेत्र में महर्षि दयानन्द सरस्वती एक महान् सनातन वैदिक धर्म-प्रचारक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका संपूर्ण जीवन वैदिक धर्म के प्रचार, शुद्धि और पुनर्स्थापना के लिए समर्पित रहा। वेदमंत्रों द्वारा ईश्वर की स्तुति, यज्ञों का आयोजन और आर्यजनों की नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का प्रयास उनकी धार्मिक निष्ठा को प्रकट करता है। काशी में भगवान् विश्वनाथ की प्रार्थना करते समय उन्होंने ईश्वर को महेश, दयालु, निर्मल, अजर, निर्विकार, सर्वाधार और विजयप्रद जैसे गुणों से युक्त बताकर उसकी निराकार और सर्वशक्तिमान सत्ता को स्वीकार किया, जिससे उनके धर्म-दर्शन की वैदिक दृष्टि स्पष्ट होती है।

स्वामी दयानन्द ने यज्ञशालाओं का नवनिर्माण करवाकर वैदिक विधि से यज्ञों की परंपरा को पुनर्जीवित किया। उनके लिए यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि समाज की शुद्धि, पर्यावरण-संतुलन और सामूहिक कल्याण का साधन था। इस प्रकार उनका धर्म व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित न होकर सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थान से गहराई से जुड़ा हुआ था।

दर्शन :

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दार्शनिक चिंतन वैदिक परंपरा पर आधारित, तर्कसंगत और आत्मानुभूति-केंद्रित है। उनके दर्शन का मूल आधार जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति के शाश्वत संबंधों की विवेचना है। वे जीवात्मा के स्वरूप को चेतन, सूक्ष्म, अजर और अमर मानते हैं। उनके अनुसार जीवात्मा में आना-जाना स्वाभाविक है, क्योंकि चेतन सत्ता होने के कारण वह स्थिर नहीं, बल्कि कर्म और चेतना की गति से युक्त है। यही कारण है कि जीवात्मा जन्म-मृत्यु के आवागमन के चक्र में बँधी रहती है। यह बन्धन माया अथवा प्रकृति के संसर्ग से उत्पन्न होता है और जब तक कर्मों का क्षय नहीं हो जाता, तब तक इस चक्र से मुक्ति संभव नहीं होती।

महर्षि दयानन्द का यह मत विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मुक्त जीवात्मा भी पुन: बँध सकती है। उनके अनुसार मुक्ति कोई स्थायी निष्क्रिय अवस्था नहीं, बल्कि चेतन आत्मा की एक विशेष दशा है, जिसमें वह कर्म-बन्धनों से मुक्त होकर आनन्द का अनुभव करती है। वे गीता की उपमा के समान यह स्पष्ट

करते हैं कि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों का परित्याग कर नए वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी पुराने शरीर को छोड़कर नवीन शरीर में प्रवेश करती है। इस प्रक्रिया में जन्म किसी दिव्य अवतार के रूप में नहीं, बल्कि जीवात्मा के अपने कर्मों के अनुसार होता है। इसीलिए वे अवतारवाद का खण्डन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि अवतार जीवात्मा का हो सकता है, ईश्वर का नहीं।

ईश्वर के स्वरूप के विषय में स्वामी दयानन्द का मत अत्यन्त स्पष्ट और वेदसम्मत है। वेदों में वर्णित ईश्वर को वे अकाय, अव्रत, अजन्मा और कर्म–बन्धनों से सर्वथा मुक्त मानते हैं। उनके अनुसार यदि सम्पूर्ण शक्तिमान ईश्वर किसी एक शरीर में अवतरित हो जाए, तो सृष्टि के संचालन और पालन का कार्य कैसे संभव होगा। ईश्वर न तो जन्म लेता है और न ही किसी कर्म का फल भोगता है; कर्मफल का भोग तो केवल जीवात्मा को ही करना पड़ता है। इस प्रकार उनका दर्शन कर्मसिद्धान्त और नैतिक उत्तरदायित्व की दृढ़ स्थापना करता है।

स्वामी दयानन्द ईश्वर, जीव और प्रकृति—इन तीनों को अनादि मानते हैं। उनके अनुसार ये तीनों सदा से हैं और सृष्टि–प्रलय के चक्र में इनका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है, किंतु इनका अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता। ईश्वर सर्वव्यापक है और आकाश के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। उसकी अनन्त शक्तियाँ सर्वत्र फैली हुई हैं, किंतु वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। वह अजन्मा, महान् और योगयुक्त आत्मानुभूति द्वारा ही अनुभव करने योग्य है।

उपासना के संदर्भ में महर्षि दयानन्द का दर्शन बाह्य आडम्बरों के स्थान पर आन्तरिक साधना पर बल देता है। उनके अनुसार हृदय ही सच्चा मन्दिर है और ईश्वर की उपासना आत्मा के द्वारा ही की जानी चाहिए। साधक को चाहिए कि वह इन्द्रियों को संयमित करे, मन को आत्मा में लीन करे और योगकला के माध्यम से परमात्मा का साक्षात्कार करे। इस अवस्था में आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न आनन्द का अनुभव होता है, जो संसारिक सुखों से सर्वथा भिन्न और श्रेष्ठ है।

स्वामी दयानन्द के अनुसार ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और अमर है। वह आकाश से भी व्यापक है और परमाणु से भी सूक्ष्म। उसका स्वरूप निराकार, अनादि और उज्ज्वल है। इस प्रकार उनका दर्शन एक ओर जहाँ कर्म, पुनर्जन्म और नैतिक उत्तरदायित्व की पुष्टि करता है, वहीं दूसरी ओर आत्मिक साधना, योग और आत्मानुभूति के माध्यम से जीवन के परम लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। समग्र रूप से देखा जाए तो महर्षि दयानन्द का दर्शन भारतीय वैदिक परंपरा की गहन दार्शनिकता को आधुनिक तर्कबुद्धि के साथ प्रस्तुत करता है और मानव को आत्मिक उन्नति तथा सत्य की खोज के मार्ग पर अग्रसर करता है।

स्वामी दयानन्द का योगदान :

स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान भारत, भारतीयता, भारतीय समाज और संस्कृति के प्रति उनकी गहन निष्ठा तथा कर्मशील राष्ट्रभावना का जीवंत प्रमाण है। उन्होंने जिस काल में कार्य किया, वह भारतीय इतिहास का ऐसा संक्रमणकाल था, जब समाज, धर्म और संस्कृति अनेक विकृतियों से ग्रस्त थे और राष्ट्रीय चेतना सुप्तावस्था में थी। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द ने न केवल वैचारिक स्तर पर, बल्कि संस्थागत और व्यावहारिक स्तर पर भी भारतीय समाज को जागृत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनका सक्रिय योगदान भारतीय इतिहास की एक अमूल्य निधि के रूप में स्वीकार किया जाता है।

स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभाएँ उनके सामाजिक और धार्मिक चिंतन की

व्यावहारिक अभिव्यक्ति थीं। उदयपुर में स्थापित परोपकारिणी सभा इसका एक प्रमुख उदाहरण है, जिसके सभापति महाराणा सज्जनसिंह जैसे राष्ट्रनिष्ठ शासक थे। इस सभा में सम्मिलित अन्य सदस्य भी चरित्रवान, सनातन धर्म के प्रति आस्थावान तथा वैदिक विधि के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले थे। इस सभा का मुख्य उद्देश्य केवल धार्मिक उपदेश देना नहीं था, बल्कि परमधर्म और परमार्थ की स्थापना के माध्यम से समाज का नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान करना था। स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि जब तक समाज का नेतृत्व चरित्रवान और धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के हाथों में नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का वास्तविक कल्याण संभव नहीं है। परोपकारिणी सभा के माध्यम से उन्होंने संगठित समाज–सुधार और लोककल्याण की दिशा में ठोस प्रयास किया।

समाज–सुधार आंदोलन की परंपरा में आर्यसमाज की स्थापना स्वामी दयानन्द का सर्वाधिक क्रांतिकारी और दूरगामी योगदान माना जाता है। उन्होंने सन् 1875 ईस्वी में बम्बई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना कर भारतीय समाज को एक ऐसा मंच प्रदान किया, जो वैदिक धर्म की शुद्ध व्याख्या, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का केंद्र बना। आर्यसमाज केवल एक धार्मिक संस्था नहीं था, बल्कि वह समाज–सुधार, शिक्षा–प्रसार और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सशक्त आंदोलन बन गया। इसके माध्यम से मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, जातिगत भेदभाव और सामाजिक जड़ताओं के विरुद्ध सशक्त वैचारिक संघर्ष प्रारम्भ हुआ।

आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् स्वामी दयानन्द के प्रेरणादायी विचारों के परिणामस्वरूप भारत के अनेक नगरों में आर्यसमाज मन्दिरों की स्थापना हुई। अमृतसर, गुरदासपुर और अन्य नगरों में स्थापित आर्यसमाज केन्द्र वैदिक शिक्षा, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के प्रमुख केंद्र बने। इन संस्थाओं के माध्यम से समाज में सत्य, धर्म, शिक्षा और नैतिकता के मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया। आर्यसमाज ने आगे चलकर गुरुकुलों, विद्यालयों, अनाथालयों और सामाजिक सेवा संस्थानों की स्थापना में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे स्वामी दयानन्द के विचार जन–जन तक पहुँच सके।

समग्रतः स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन और चिंतन भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म, राजनीति और दर्शन का एक सशक्त एवं समन्वित रूप प्रस्तुत करता है। उन्होंने वैदिक मूल्यों के आधार पर समाज–सुधार का कार्य करते हुए अंधविश्वास, कुरीतियों और असमानताओं का विरोध किया तथा शिक्षा, नारी–सम्मान और नैतिक आचरण को सामाजिक उन्नति का आधार बनाया। सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने भारतीय परंपरा की रक्षा करते हुए संस्कृत, वेद और आर्ष ग्रंथों की प्रतिष्ठा की और भारतीय आत्मगौरव को पुनर्जीवित किया। राजनीतिक चिंतन में उन्होंने धर्मनिष्ठ, न्यायपूर्ण और लोककल्याणकारी शासन की संकल्पना दी, जिससे राष्ट्रभक्ति और स्वराज्य की चेतना विकसित हुई। दार्शनिक दृष्टि से उन्होंने जीव, ईश्वर और प्रकृति के अनादि स्वरूप को स्वीकार कर कर्म, पुनर्जन्म और आत्मानुभूति पर आधारित तर्कसंगत वैदिक दर्शन प्रस्तुत किया। संस्थागत रूप में आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा जैसी संस्थाओं के माध्यम से उनके विचार व्यवहार में उतरे। इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान भारतीय नवजागरण की अमूल्य धरोहर है, जो आज भी समाज और राष्ट्र के लिए पथप्रदर्शक बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, सम्पादक- हरदेव शर्मा, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1998
2. दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 2004
3. यज्ञेश्वर शास्त्री, भारत-राष्ट्ररत्नम् : राष्ट्रवादी दयानन्दः, संस्कृत साहित्य निकेतन, दिल्ली, 1972
4. मेघाव्रत, दयानन्द दिग्विजय, आर्य साहित्य प्रचारक सभा, दिल्ली, 1965
5. दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1877
6. मनु, मनुस्मृति, टीका- मेधातिथि, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
7. दयानन्द सरस्वती, व्यवहारभानु, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1878
8. लाला लाजपत राय, महर्षि दयानन्द, (हिंदी अनुवाद), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1968
9. रामदेव शास्त्री, आर्यसमाज का इतिहास, आर्य पुस्तकालय, अजमेर, 1956
10. सत्यव्रत सामश्रमी, वेद और भारतीय संस्कृति, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978
11. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, राजधर्म एवं दण्डविधान प्रसंग, 1875 ई.
12. यज्ञेश्वर शास्त्री, राष्ट्रवादी दयानन्द, संस्कृत साहित्य निकेतन, दिल्ली, 1972
13. हरबिलास शारदा, स्वामी दयानन्द और भारतीय नवजागरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1961
14. दयानन्द सरस्वती, यज्ञ और ईश्वर उपासना (संकलित ग्रंथ), आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली,1880
15. मेघाव्रत, दयानन्द दिग्विजय, काशी प्रसंग, 1965 ई.
16. राधाकृष्णन, एस., Radhakrishnan, S., Indian Philosophy, Vol. I, George Allen & Unwin, London, 1923
17. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1960
18. उदयपुर परोपकारिणी सभा अभिलेख, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, स्थापना 1878 ई.
19. आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्यसमाज का विधान एवं इतिहास, आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, 1950 ई.
20. महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, गुरुकुल परंपरा एवं वैदिक शिक्षा* (स्मारिका), 1995